नीलेश जी की जन्म-तिथि (4 अगस्त) के संदर्भ में

नीलेश रघुवंशी की काव्य-संवेदना

रवींद्रनाथ मिश्र

हमारे घर-परिवार, पास-पड़ोस, दैनिक जीवन, समाज आदि से जुड़ी एवं छिपी संवेदनाओं को युवा कवयित्री नीलेश रघुवंशी ने नई अर्थवत्ता दी है । मध्यप्रदेश के गंज बासोदा में 4 अगस्त 1969 को जनमी नीलेश हिंदी में स्नातकोत्तर और भाषा विज्ञान में एम.फिल. हैं । समकालीन भारतीय साहित्य, वर्तमान साहित्य, साक्षात्कार, वागर्थ आदि जैसी महत्त्वपूर्ण पत्रिकाओं में रघुवंशी की कविताएँ समय-सम पर छपती रहीं । उनके 'घर-निकासी' (1997), 'पानी का स्वाद' (2004), 'अंतिम पंक्ति में' (2008) में ये तीन काव्य-संग्रह एवं बच्चों पर कई नाटक प्रकाशित हुए । 'हंडा' कविता के लिए उन्हें 1997 में भारत भूषण अग्रवाल पुरस्कार और 'घर-निकासी' कविता-संग्रह के लिए क्रमशः आर्य स्मृति साहित्य सम्मान तथा म.प्र. साहित्य परिषद का दुष्यंत कुमार स्मृति सम्मान से सम्मानित किया गया । संप्रति दूरदर्शन केंद्र भोपाल में कार्यरत साहित्य सर्जन में निरत हैं ।

अनामिका और गगन गिल से अलग तेवर की कविताओं में नीलेश की पारिवारिक संवेदनाओं की कविताएँ अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं । माता-पिता, दादा-दादी, भाई-बहन के प्रति प्रेम भरी स्मृतियों, व्यवहारों, क्रियाकलापों, आचरणों आदि को कवयित्री ने अपनी कविताओं में भावपूर्ण संवेदन के साथ व्यक्त किया है । 'ठहरो' में नवजात शिशु के हिल रहे नन्हें हाथों का जिक्र करती हुई 'संतान साते' कविता में रघुवंशी परंपरा, प्रेम और लोक संस्कृति का अदभुत चित्र गढ़ती हैं ।

पेड़ की परिक्रमा करते / कभी नहीं थके माँ के पाँव

माँ नहीं समझ सकी कभी/जब माँग रही होती है वह दुआ

हम सब थक चुके हैं जीवन से ।[1]

'घर-निकासी' की प्रारंभ की लगभग बीस कविताएँ किसी न किसी रूप में कवयित्री के माँ-बाप, बहन-भाई और लड़की के जीवन की संवेदनाओं पर आधारित हैं । आधुनिक तकनीकी, बाजारवाद, मीडिया की चमक-दमक से पूर्ण हावभाव से भरी फैशनपूर्ण जिंदगी में कवयित्री को माँ के सिर पर रखी हुई साडी एक नया भावबोध पैदा करती है । पिता की ओज पूर्ण बिजली-सी कडकती वाणी उसे फोन पर थरथराती हुई लगती है । 'सिंदूर' कविता जहाँ नारी के सुहाग , नए जीवन, आशा, उन्माद, आकांक्षा, हर्षोल्लास, खुशहाली आदि का प्रतीक है, वहीं पर 'भुजरियें', 'पानदान' और 'अभाव' क्रमशः मातृत्व, पिता-पुत्री का प्रेम और कवयित्री आर्थिक अभाव भरी जिंदगी का बयान करती हैं ।

काश खरीद पाती मैं तुम्हारे लिए/सिंदूर और साड़ी

पिता के लिए नया कुर्ता/भाई के लिए मफलर

जवान होती बहन के लिए कुछ सपने ।

खाली जेबों में हाथ डाले/हर रोज जाती हूँ बाजार

और घंटों करती रहती हूँ विंडो-शॉपिंग ।[2]

नीलेश ने अपने परिवार के प्रति जिन आत्मीय संवेदनाओं को व्यक्त किया है, आज वे बाजारवाद, पूंजीसंग्रह, संकीर्ण स्वार्थवाद आदि के तले पिसती नजर आ रही हैं । नंदकिशोर नवल ने लिखा है- ''नीलेश की कविता की जो विशेषता सर्वप्रथम हमार ध्यान आकर्षित करती है, वह है उसमें पाया जाने वाला घरेलुपन या पारिवारिकता । आकस्मिक नहीं कि उसमें नवजात पुत्र से लेकर बहनें और माता-पिता तो हैं ही सारे घर में लुढकते फिरने वाला वह हंडा भी है, जिसे एक युवती अपने साथ दहेज में लाई थी । महत्त्वपूर्ण यह है कि यह सभी कुछ कविता में उत्कृष्ट मानवीय मूल्यों की तरह आता है, जिनका विस्तार स्वभावतः पूरे जमाने तक है, जिसका मतलब मजदूर भी है, बालश्रमिक भी और बेरोजगार लड़कियाँ भी ।''[3]

नीलेश रघुवंशी ने लड़की के जीवन एवं उसके विचारों से संबंधित कई कविताएँ लिखी हैं । सत्रह साल की उम्र में लड़की अपने भविष्य के बिषय में क्या सोचती है ? बिना टिकट यात्रा करती हुई लड़की की क्या मनःस्थिति और उसके हावभाव का अंकन, मेंहदी लगी लड़की के हाथों के विविध रूप तथा कविता लिखने वाली लड़की की पारिवारिक अड़चनों का कवयित्री ने कुछ इस तरह से बयान किया है कि उसमें उसकी स्वानुभूति नज़र आती है।

जब कभी कविता लिखती है लड़की/कहा जाता है सीखो मशीन चलाना

सिलो कपड़े बुनो स्वेटर/मत बुनो शब्द मत बनो कवि

यह सब फिजूलखर्ची है वक्त की ।

रहो लड़कियों की तरह/मत घूमो सड़कों पर

मत लो बहसों में हिस्सा/सीखो पहले घर के सारे काम-काज

और इन सबसे बच जाए समय/तो कर लेना कविता-बविता भी ।[4]

'घर-निकासी' कविता में बेटे की शादी में घर की खुशहाली के अनेक चित्र खींचे गए हैं, उनमें से एक है, जहाँ बारात विदा करते समय माँ अपने प्रति बेटे के प्रेम को लेकर आशंकित हो जाती है कि कहीं शादी के बाद वह अपनी पत्नी का बनकर न रह जाए । ऐसा सामान्यतः लोकजीवन में पहले बहुत देखने को मिलता था । इसे हम संयुक्त परिवार की आर्थिक मजबूरी से जोड़कर भी देख सकते हैं । भारतभूषण अग्रवाल स्मृति पुरस्कार से पुरस्कृत 'हंडा' कविता से नीलेश रघुवंशी को काव्यजगत में एक खास पहचान मिली । दरअसल दहेज में प्राप्त हंडा में युवती की, मायके और ससुराल की अनेक स्मृतियाँ छिपी हुई हैं । 'पिता की पीठ' कविता में परिश्रम, ग़रीबी, तंगहाल जीवन, अशिक्षा, प्रेम, अभाव भरी जिंदगी का अदभुत संवेदना भरी हुई है ।

रोजमर्रा, लोकजीवन और आसपास के जीवन की संवेदनओं से जुड़ी 'तिब्बती', 'चबूतरा', 'मेरी कहानी', 'अपडाउनर्स', 'गरम कपड़े', 'उदास' आदि कविताओं में अन्य विषयों के साथ नारी की जिजीविषा, आत्मविश्वास, बहादुरी का जिक्र है । उनका मानना है कि अब भीगी बिल्ली बनने से

काम नहीं चलेगा । रघुवंशी की प्रगतिशील-दृष्टि 'गरम कपड़े' में व्यक्त हुई है, जहाँ वे असमानता, अभाव और ग़रीबी को देखकर खीजती हैं । आज बहुत सारे ऐसे इंसान हैं जो गाँव को सीने से चिपकाए और शहर को पराया समझते हुए पेट की आग बुझाने एवं अपने परिवार के खातिर शहर में जीवन जीने के लिए अभिशप्त हैं ।

वह शहर आया अकेला/साथ में गाँव भी आ गया

जो अक्सर वापस चलने को कहता/दोस्त स्वप्न में समझाते मनाते

कब तक रहोगे अधसोए/कब तक आखिर कब तक

पड़ा रहेगा तुम्हारा सामान कोने में/ऐसे शहर में रहने से क्या फायदा

जहाँ एक कोना भी तुम्हारा अपना नहीं ।

वह उदास बहुत रहता था/न गाँव जाता और न शहर को अपना समझता था ।[5]

आधुनिकता तनाव भरी जिंदगी से छुटकारा पाने के लिए 19 दिसंबर 2008 के नवभारत टाइम्स दैनिक के अनुसार प्रतिदिन औसतन 336 आत्महत्याएँ हो रही हैं । इस आँकडे के अनुसार आतंकवाद से मरने वालों की संख्या इतनी नहीं है। 'तनाव' कविता में कवयित्री ने आत्महत्या के अनेक कारणों का जिक्र किया है । कह गए तुम/तनाव स परेशान होकर जा रहे हो/नहीं जान सके/एक तनाव से पैदा होते हैं सौ सपने/तुम्हें थे कई तनाव/ हो जाते सपन हजार ।[6]

इसी प्रकार 'तब भी', 'धूसर गहरे उदास रंग', 'बारिश', 'वसंत की सूचना', 'नदी-सी', 'दीवार', 'अक्स', 'शब्द' आदि कविताएँ कवयित्री की बहुवर्णी संवेदनाओं से भरी हुई हैं, जिनमें प्रेम, संघर्ष, हिदायतें, उदास मन, प्रकृति के धूलधूसरित बादल, स्वप्न, वर्षात, वसंत, धूप, हवा आदि नाना प्रकार के दृश्य एवं अनुभूतिया विद्यमान हैं ।

समकालीन काव्य लेखन में रचनाकारो की बाढ-सी आ गई, ऐसे में अपनी पहचान बनाने के लिए रचनाकारों ने विविध विषयों और रूपो को अपनाया । नए-नए बिंबों और प्रतीकों का प्रयोग किया गया । पहचान की इस होड में नए-नए विषयों की तलाश शुरु हो गई है । मुझे नहीं लगता है कि ढाबा पर नीलेश रघुवंशी को छोड़कर किसीने कविता लिखी है । 'ढाबा : आठ कविताएँ' शीर्षक में कवयित्री ने 'ढाबा' की संपूर्ण संस्कृति को पूरी जीवंतता के साथ व्यक्त किया है । मगलेश डबराल ने 'घर-निकासी' के कवर पृष्ठ पर लिखा है- " 'ढाबा' शीर्षक कविता के आठ अंश अपनी विषयवस्तु में तो अनूठे हैं ही, वे सड़क के किनारे मोटरों के शोर और बैलगाडियों की धीमी रफ्तार के बीच बसे हुए एक मामूली और ग़रीब ढाबे की गतिविधि, उससे जुडे परिवार के जीवन-दृश्यों, उसके मासूम विवरणों के जरिए एक पूरी दुनिा का रूपक निर्मित कर देते हैं ।"

कवयित्री ने ढाबा के परिवेश, खाने की महक, स्कूल और ढाबे से जुड़े बच्चे, मेंहदी के रंग और बर्तनों की कालिख से सने हुए लड़कियों के हाथ, इकलौता भाई की कलाई में बंधी आठ बहनों की राखियों के आग की भट्टी में झुलसते हुए डोरे तथा माथे पर लगे हुए टीके से टपकती हुई श्रम की बूंदें, आजीवन बच्चों की इच्छाओं की पूर्ति हेतु खटता

हुआ, खुद की इच्छाओं से बेखबर बाप, स्कूल में भी लड़कियों को ढाबे की याद, बारिश में भीगते हुए ग्राहक, ढाबे पर जलती हुई रोटी से प्रेम का संप्रेषण आदि के द्वारा ढाबे के व्यवसाय में संलग्न पूरे परिवार का गहन संवेदनात्मक चित्र खींचा है ।

ढाबे पर/झाड़ू लगाते बर्तन माँजते-माँजते हुआ प्रेम ।

वह आकर खड़ा हो जाता/सामने वाली पान की गुमटी पर

रोटी बनाते-बनाते-बनाते मैं देखती उसकी ओर/तवे पर जलती रोटी करती इशारा

'आना शाम को' ।[7]

विवेच्य विषय के अनुसार मैंने नीलेश रघुवंशी के 'घर-निकासी' काव्यसंग्रह की कविताओं की संवेदनाओं को परखने का प्रयास किया है । कवयित्री ने जीवन-जगत के विभिन्न विषयों को बहुत ही साधारण, चिरपरचित और आत्मीय भाषा में बिंबात्मक स्वरूप प्रदान किया है । उन्हें पढते हुए किसी प्रकार की दुर्बोधता का आभास नहीं होता ।

संदर्भ सूची

1,2. नीलेश रघुवंशी - घर-निकासी, पृ.13,18

3. नंदकिशोर नवल एवं संजय शांडिल्य - संपादक-संधि-बेला, पृ. 154

4. 4,5,6,7 - नीलेश रघुवंशी - घर निकासी, पृ. 24,55,59,106
43,44 - हरीशचंद्र पांडेय - एक बुरूंश कहीं खिलता है - पृ. 57, 67
45,46 - वही - भूमिकाएँ खत्म नहीं होतीं - पृ. 28, 34
47 - स्वप्निल श्रीवास्तव - ईश्वर एक लाठी है - पृ. 7
48 - वही - ताख पर दियासलाई - पृ. 30
49 - कात्यायनी - सात भाइयों के बीच चंपा - पृ. 11
50 - वही - इस पौरुषपूर्ण समय में - पृ. 19
51,52 - गगन गिल - एक दिन लौटेगी लड़की - पृ. 81, 106
53 - वही - अंधेरे में बुद्ध- पृ.115
54 - वही - यह आकांक्षा समय नहीं - पृ. 23
55 - वही - थपक थपक दिल थपक थपक - पृ. 28
56 - नामिका - बीजाक्षर - पृ. 22
57 वही - कविता में औरत - पृ. 33, 34
58,59 वही - अनुष्टुप - पृ. 20, 71
60,61 - नीलेश रघुवंशी - घर-निकाशी - पृ. 78, 104
62 - परमानंद श्रीवास्तव - सं. आलोचना - अप्रैल-जून - 2003 - पृ. 50

अधिष्ठाता, भाषा एवं साहित्य संकाय, हिंदी विभाग, गोवा विश्वविद्यालय, गोवा - 403206